ग्रंथ शिरोमणि 'श्री भूवलय'

—भारतीय मेधा, ज्ञान-विज्ञान-साहित्य-सामर्थ्य का अद्‌भुत उदाहरण

समीक्षक : डॉ० बालकृष्ण अकिंचन

सार्वभौम अध्यात्म-चेतना के धनी, धर्मप्राण, पूज्यपाद आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज लुप्त प्राय: ग्रंथराशि-गंगा के अभिनव भागीरथ हैं। यों तो अनेकानेक जैन तीर्थों के उद्धारक, स्कूल-कालिजों, औषधालयों, पुस्तकालयादिकों के संस्थापक, जीर्णोद्धारक आचार्यश्री को ग्रंथ गंगा तक सीमित करना एक भारी भूल होगी, किन्तु साहित्य के इस अकिंचन विद्यार्थी की दृष्टि में उसी का मूल्य सर्वाधिक है। कारण, उनकी साहित्य-सर्जना एवं अनुवादन क्षमता के कारण ही आज का हिन्दी संसार तमिल, गुजराती, कन्नड़, बंगला आदि के अनेक सद्‌ग्रंथों के आस्वादन एवं अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त कर पाया है। उनकी अनुवाद-साधना के परिणामस्वरूप ही हिन्दी का भक्ति साहित्य अन्यान्य अनेक भारतीय भाषाभाषियों को भक्ति-भागीरथी में रसावगाहन का पुनीत अवसर सुलभ करा रहा है। इतना सब कुछ होते हुए भी यदि वे कुछ न करते और एकमात्र श्री भूवलय ग्रंथराज के हिन्दी अनुवाद में ही तत्पर हुए होते, तो भी उनकी साहित्य-साधना, उसी प्रकार महिमामंडित मानी जाती जितनी कि आज मानी जा रही है। इसका कारण है श्री भूवलय ग्रंथ की महत्ता, उपयोगिता, गंभीरता, संश्लिष्टता एवं विविधता।

श्री भूवलय ग्रंथ भारतीय मेधा, विशेषतया जैन मनीषियों के ज्ञान-विज्ञान-साहित्य-सामर्थ्य का एक अद्‌भुत उदाहरण है। विशाल भारत के प्रथम महामहिम राष्ट्रपति अजातशत्रु डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने इसे संसार का आठवां आश्चर्य घोषित किया था। ज्ञान-विज्ञान की इतनी शाखाओं तथा संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़ आदि अनेकानेक भाषाओं का एक साथ परिचय कराने वाला यह ग्रंथ सचमुच ही आठवां आश्चर्य है। भाषा को अंकों में लिखकर रचयिता ने इस बात का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत कर दिया है कि आज से एक हजार वर्ष से भी पहले वर्तमान युग की कम्प्यूटर भाषा के समान ही भाषा को अंकों में लिखने की कोई समृद्ध परम्परा विद्यमान थी। हम यह बहुत बड़ी और सर्वथा नई बात कह रहे हैं। इस क्षेत्र में नवीन शोधों का श्रीगणेश होना चाहिए।

सिरि भूवलय या श्री भूवलय नामक यह ग्रंथ स्वनामधन्य महापंडित श्रीयुत् कुमुदेन्दु आचार्य की कृति है। इस नाम के अनेक पूर्ववर्ती और परवर्ती आचार्य प्रकाश में आ चुके हैं, किन्तु अन्त: एवं बाह्य साक्ष्य के कतिपय निश्चित प्रमाणों के आधार पर यह निर्णय हो गया है कि श्री भूवलय के रचयिता, दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु का समय आठवीं शताब्दी से बाद का नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण अमोघवर्ष का अनेक बार नामोल्लेख है जिसने ८१४ से ८७७ ई० तक राज्य किया था। अत: स्पष्ट है कि श्री भूवलय एक हजार वर्ष से भी पुराना ग्रंथ है।

यह समय लगभग वही है जब हिन्दी का उदय हुआ था। हिन्दी या हिन्दुवी शब्द उतना पुराना नहीं है। देवनागरी का प्रयोग बहुत पहले से मिल रहा है। यह एक सुखद आश्चर्य की बात है कि कुमुदेन्दु आचार्य ने भी भाषा परिगणन में अपने काल की जिन ७१८ भाषाओं का उल्लेख किया है उनमें देवनागरी भी एक है। ७१८ भाषाओं की पूरी नामावली, कुमुदेन्दु जी ने गिनाई है। इनमें से अनेक नामों से हम परिचित हैं, अनेक से अपरिचित। कुछ विचित्र नाम निम्नलिखित हैं—

चाणिक्य, पाशी, अमित्रिक, पवन, उपरिका, वराटिका, वजीद खरसायिका, प्रभृतृका, उच्चतारिका, वेदनतिका, गन्धर्व, माहेश्वरी, दामा, बोलघी आदि। भाषाओं के कुछ नाम क्षेत्रादि से सम्बद्ध हैं। जैसे—सारस्वत, लाट, गौड़, मागध, बिहार, उत्कल, कान्यकुब्ज, वैस्मर्ण, यक्ष, राक्षस तथा हंस। इन सात सौ अट्‌ठारह भाषाओं में से अनेक आज भी जानी तथा लिखी पढ़ी जाती हैं। जैसे—संस्कृत, प्राकृत, द्रविड़, ब्राह्मी, तुर्की, देवनागरी, आंध्री, महाराष्ट्र, मलयालम, कलिंग, काश्मीर, शौरसेनी, बाली, सौराष्ट्री, खरोष्ट्री, तिब्बति, वैदर्भी, अपभ्रंश, पैशाचिक, अर्धमागधी इत्यादि। अत: भाषाविज्ञान के लिए यह ग्रंथ एक नई चुनौती है। भाषाविज्ञान के साथ ही यह व्याकरण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण होगा। कुमुदेन्दु आचार्य ने इसकी व्याकरणगर्भिता स्वयं भी स्वीकार की है। सौभाग्य से उनकी अंकमयी सरस्वती का अनुवाद भी मुनिश्री के श्रम से बड़ा सटीक हुआ है। हां, अनुवाद में कुछ अटपटे शब्द प्रयोग में अवश्य आये हैं। वे संस्कृत आदि की परम्परा से

तो ठीक हैं पर परिनिष्ठित हिन्दी में उस रूप में प्रयुक्त नहीं होते यथा ऊन (शरीर से किंचित् ऊन है। पृ० ६६), फिजिक्स के लिए अणु विज्ञान (पृ० १४२), छन्द के लिए 'दोहों' शब्द का प्रयोग (पृ० १४२) और वह भी भगवद्गीता के प्रसंग में, भेड़ों के लिए भेड़िये शब्द का प्रयोग (पृ० १८६), बैठते के लिए मार्ग में 'तिष्ठते हैं' (पृ० १८८) इसी प्रकार लांछन शब्द का प्रयोग चिह्न के अर्थ में। हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से लिंग और वचनादि के कुछ प्रयोग भी चिन्त्य है। इतना होने पर भी आचार्य जी का हिन्दी अनुवाद कमाल का है और कमाल का है उनका पांडित्य। हो भी क्यों न ! वे स्वयं कुमुदेन्दु की परम्परा के आचार्य हैं।

ग्रंथ में जिन ७१८ भाषाओं का नामोल्लेख किया गया है उन सभी भाषाओं को आचार्य ने कैसे निबद्ध किया यह कहना कठिन है।

आचार्य कुमुदेन्दु का विभिन्न भाषाओं में उनका पाण्डित्य तथा काव्य-रचना-कौशल निःसन्देह कमाल का था। इस ग्रंथ में छः हजार सूत्रों तथा छः लाख श्लोकों के रचने का उल्लेख है। "यह ग्रंथ मूलतः कन्नड़ी भाषा में छपा है। मुद्रित ग्रंथ के पद्यों में काव्य श्रेणिबद्ध है। प्रत्येक अध्याय में आने वाले कन्नड़ भाषा के आदि अक्षरों को ऊपर से लेकर नीचे पढ़ते जायं तो प्राकृत काव्य निकलता है और मध्य में सत्ताइसवें अक्षर को, ऊपर से नीचे पढ़ने पर संस्कृत काव्य निकलता है। इस तरह पद्यबद्ध रचना का अलग-अलग रीति से अध्ययन किया जाय, तो अनेक बंधों में अनेक भाषाएं निकलती हैं—ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। उदाहरण के लिए ग्रंथ के प्रथम खंड—मंगल प्राभृत—के प्रथम अध्याय 'अ' को लिया जा सकता है। इसके प्रथम अक्षरों के मिलाने से जो प्राकृत छंद बनता है, वह निम्नलिखित है—

अट्ठ विहकम्म विमला णिटिटय कज्जा पणट्ठसंसारा
दिट्ठसयलत्थ सारा सिद्धआ सिद्धिन मम दिसनतु ॥

और बीच के अक्षरों से बना सुप्रसिद्ध श्लोक है—

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ।।

कितनी विचित्र होगी कुमुदेन्दु आचार्य की भाषा-प्रतिभा और कितना विदग्धतापूर्ण होगा उनके कवि का काव्य-कौशल !

संस्कृत श्लोक कुमुदेन्दु जी की जैनाचार्योचित ओउम् के प्रति निष्ठा का प्रमाण भी है। वैसे तो आज का सामान्य कर्मकाण्डी पुरोहित या संस्कार कराने वाला ब्राह्मण भी इसी मन्त्र से ओउम् का पूजन कराता है। किन्तु वह ओउम के मर्म को शायद ही समझ पाता है। आचार्य ने ग्रंथ में बड़े विस्तृत रूप से ओउम् की महिमा प्रकाशित की है।

दूसरा अध्याय ज्ञान की शास्त्रीय विवेचना से आरम्भ होता है। उसे दो भागों में विभक्त किया गया है—सम्यक् ज्ञान तथा मिथ्या ज्ञान। सम्यक् ज्ञान—मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्य और केवल नाम से पांच प्रकार का तथा मिथ्या ज्ञान कुश्रुत, कुमति, कुअवधि नाम से तीन प्रकार का बताया गया है। ज्ञान से लोकोत्तर सिद्धियां संभव बताई गई हैं, यथा—'पाद औषधि' का विधान। इसे लेप करके व्यक्ति का आकाश में उड़ना सिद्ध किया गया है और यह घोषणा की गई है कि भूवलय के 'प्राणवायु पर्व' में जंगली कटहल के फूलों से इसके निर्माण की विधि स्पष्ट की गई है। वहीं विमान इत्यादि तैयार करने की विधि भी कही बताते हैं। अन्य ज्ञानों में कामकला, पुष्पायुर्वेद तथा गीता ज्ञान प्रमुख हैं। यहीं नेमि गीता, भगवद्गीता, महावीर गीता तथा कुमुदेन्दु गीता का उल्लेख है। यहीं पर दो अंकों से अंग्रेजी-अरबी-फारसी इत्यादि शब्द बनाने की विद्या तथा तीन अंकों से तीन अक्षरों वाले सभी भाषाओं के शब्द बनाने की विद्या अंकित है और यह मान्यता स्थापित की गई है कि अंक ही अक्षर हैं और अक्षर ही अंक हैं।

तीसरा अध्याय अध्यात्म योग की चर्चा से आरम्भ होता है। कहा गया है कि आर्य लोगों को योग का मंगलमय सम्वाद प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रंथ अक्षर विद्या में निर्मित न होकर केवल गणित विद्या में निर्मित महा सिद्धान्त है। यहां योग की चली आती परम्परा की व्याख्या करके उसकी महिमा स्थापित की गई है और बताया गया है कि कषाय को नाश करने वाला शुद्ध चरित्र योग ही है। चरित्र योग के कतिपय कर्म भी वर्णित हैं। अरहन्त परमेष्ठी के चार अघातिया कर्म बड़ी सुन्दर दृष्टान्त शैली में वर्णित हैं और दर्शन, ज्ञान और चरित्र को आत्मा के तीन अंग माना गया है। फिर योग और योगी की विस्तृत व्याख्यात्मक चर्चा है जो निस्सन्देह पढ़ने लायक है। १३५वें छन्द में स्पष्ट कहा गया है कि यह भूवलय योगियों का गुणगान करने वाला ग्रन्थ है।

चौथे अध्याय में भूवलय को अशरीर अवस्था अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त कराने वाला काव्य कहा गया है। यह काव्य तब का है जब श्री वृषभदेव ने यशस्वी देवी के साथ विवाह किया था। शुभ विचार तथा शुभ शब्द की दृष्टि से भी शब्द पर विचार व्यक्त है, इसीलिए ग्रंथ के पहले 'सिरि' शब्द अंकित है—आदौ सकार प्रयोगः सुखदः। यहीं सूक्ष्म तत्व का विश्लेषण है, जो बड़ा सारगर्भित है। अध्याय की समाप्ति से पूर्व पुष्प आयुर्वेद तथा पारे की सिद्धि का वर्णन है। उदाहरण के लिए निम्न कथन उल्लेखनीय है—पारा अग्नि का संयोग पाकर बढ़ जाता है परन्तु इस क्रिया से उड़ नहीं पाता। सर्वोत्तम रूप से शुद्ध हुए पारे को हाथ में लेकर अग्नि में भी प्रवेश किया जा सकता है। यदि आकाश स्फटिक मणि पर सिद्ध रसमणि सहित पुरुष बैठ जाए तो सूर्य के साथ-साथ आकाश में और पृथ्वी के अन्दर गमन कर सकता है अर्थात् आकाश में ऊपर उड़ सकता है और नीचे पृथ्वी के अन्दर घुसकर भ्रमण कर सकता है। गिरिकर्णिका नाम एक पुष्प है। इस पुष्प के रस से

पारा सिद्ध किया जाता है, जो ऊपर बताये हुए आकाश गमन और पाताल गमन दोनों में ठीक काम करता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुष्पों के रस से पारा सिद्ध किया जा सकता है। उससे भिन्न-भिन्न चामत्कारिक कार्य किए जा सकते हैं। इस प्रकार कार्यक्रम को बतलाने वाला यह भूवलय ग्रंथ है।' (१६४-१७२)

पांचवें अध्याय के आरम्भ में गणित के नवमांक की महिमा वर्णित है। अंकों से अनेक भाषाएं बन जाती हैं। उन सब भाषाओं को एक राशि में बनाकर गणित के बंध में बांधते हुए जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी सात सौ भाषाओं द्वारा इस धर्मामृत कुम्भ में स्थापित हुई है। इतनी सूक्ष्मता गणित के कारण प्राप्त हुई है। इसीलिए अगले अध्याय अर्थात् छठे अध्याय में गणित शास्त्र को जीव के लिए मोक्ष देने वाला बताया है। उन्होंने इस प्रसंग में ऋग्वेद का भी उल्लेख किया है। उनके अन्यत्र कथन से संकेत मिलता है कि कोई अंकमय ऋग्वेद भी विद्यमान था। यह बड़ी भारी खोज का विषय होगा। ८२वें छन्द में वे कहते हैं "एक से लेकर नौ तक अंकों द्वारा द्वादशांग की उत्पत्ति होती है। उस नौ अंक में एक और मिलाने से उस दस अंक से ऋग्वेद की उत्पत्ति होती है। इसी को पूर्वानुपूर्वी तथा पश्चातानुर्वी कहते हैं। दशांग रूप वृक्ष की शाखा रूप ऋग्वेद है। इसलिए इस वेद का प्रचलित नाम ऋक् शाखा है।" यह उल्लेखनीय है कि जैनाचार्य प्रायः वेदों का उल्लेख नहीं करते किन्तु यहां वेदों की महिमा गाई है। हां, उसके मानव, देव और दनुज नाम से प्रकारों का उल्लेख करके उसके दनुज (हिंसा रूप) से सावधान किया गया है और आशीर्वाद दिया गया है कि इन वेदों द्वारा पशुओं की रक्षा, गो ब्राह्मण रक्षा तथा जैन धर्म की समानता सिद्ध हो। भूवलय का यह अंश जैन धर्म में क्रान्तिकारी प्रसंग है।

सातवां अध्याय जिनेश्वर भगवान् की महिमा से आपूरित है। सब तीर्थंकरों को कुसुमबाण कामदेव का नाश करने वाला कहा है। कुसुमों का कई प्रकार से उल्लेख हुआ है। एक सौ पचासवें छन्द में अशोक वृक्ष के फूलों का वर्णन है। यदि इसे सिद्ध करना हो तो वृक्षों के क्षुद्र पुष्प न लेकर विशाल प्रफुल्ल पुष्प लेने चाहिए और उसी को फिर यदि रसमणि बनाना हो तो इन्हीं वृक्षों के क्षुद्र (मंजरी रूप) फूल लेना चाहिए। न्यग्रोध नाम के अशोक वृक्ष के फूल को विषपान की बाधा दूर करने वाला बताया गया है। पारे को घन रूप बनाना हो तो इन पुष्पों को काम में लेना चाहिए। यहां पारे की रससिद्धि के लिए गणितीय पद्धति तथा उससे प्राप्त पारलौकिक सिद्धि का आख्यान भी है।

आठवें अध्याय में सिंहासन नाम के प्रतिहार्य रूप अंकों का वर्णन है और नन्दी गिरि पर्वत की अनेक प्रकार से महिमा गायी गई है तथा सिंह के समवशरण एवं गजेन्द्र निष्क्रीणतप आदि का वर्णन है।

नौवें अध्याय का आरम्भ भगवान् जिनेन्द्र देव की शारीरिक दिव्यताओं से होता है। यह बड़ा विचित्र एवं अलौकिक है। जैसे भोजन न करते हुए भी उनका जीवित रहना, एक मुख होते हुए भी चार मुख दीखना, आंखों की पलकें न लगना, ओष्ट दांत तालु के बिना भगवान् की दिव्य ध्वनि निकलना, समवशरण में वाटिका के सभी जीवों को अभय प्रदान करना। फिर समवशरण (एक साथ सभी प्रकार के जीवों को उपदेश) की विद्या का उल्लेख है। भूवलय की विद्याओं, भाषाओं, उसके काव्य चक्रबन्धों तथा जैन धर्म की महत्ताओं का गायन है। इस अध्याय की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि विशेष महत्त्वपूर्ण है। दो सौ तीसवें छन्द में बताया है कि यह भारत लवण देश से घिरा हुआ है और इसी भारत देश के अन्तर्गत एक वर्द्धमान नामक महानगर था। उसके अन्तर्गत एक हजार नगर थे। उस देश को सौराष्ट्र कहते थे और सौराष्ट्र देश को कर्माटक (कर्नाटक) देश कहते थे। उस देश में मागध देश के समान कई जगह उष्ण जल का झरना निकलता था। उसके समीप कहीं-कहीं पर रमकूप (पारी कुआं) भी निकलते थे। सौराष्ट्र देश का पहले का नाम निकलिंग था। भारत का त्रितलि नाम इसलिए पड़ा क्योंकि भारत के तीन ओर समुद्र है। यह भूमि सकनड़ देश थी।' (२३०-२३४)

दसवें अध्याय में अनेक विचित्रताओं का वर्णन है। जैसे, 'संसार में काले लोहे को विज्ञान विद्या से सोना बना सकते हैं पर इस भूवलय (ज्ञान) से उस स्वर्ण को धवल वर्ण बना सकते हैं।' इस अध्याय के प्रथमाक्षरों से बनने वाला प्राकृत अर्थ भी उद्धरणीय है—

'ऋषिजनों में सुग्रीव, हनुमान, गवय, गवाक्ष, नील, महानील इत्यादि निन्नियानवें कोटि जैनों ने तुंगीगिरि पर्वत पर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया। उन सबको हम नमस्कार करें।'

ग्यारहवां अध्याय रूपी द्रव्यागम, अरूपी द्रव्यागम एवं भूवलय की गणितीय महिमा के आख्यान से आरम्भ होता है। आगे चलकर ओउम्, व्यंजन, अंकाक्षर, दान, मोह-राग, जीव, शिवपद तथा सिद्धलोक से सम्बद्ध ज्ञान दिया गया है। बारहवें अध्याय का नाम 'ऋ' अध्याय है। इस अध्याय में मुनियों के संयम का वर्णन है। पहले छन्द में ही बारह तप गिनाते हुए दिगम्बर महामुनियों की संख्या तीन कम नौ करोड़ बतायी गई है। सेनगण की गुरु परम्परा का भी वर्णन है। लक्ष्मण द्वारा अपने भाई श्री राम के दर्शनार्थ एक पहाड़ पर भगवान् बाहुबली आकार के समान रेखाएं खींचना, स्याद्वादमुद्रा से अपने मन को बांधना; रेणुकादेवी के ऊपर उनके ही पुत्र परशुराम द्वारा फरसे के आघात की कथा है। आगे ऐसे आघात शस्त्र का वर्णन है जो सम्पूर्ण आयुधों को जीत लेता है। यह आयुध पारा मिलाकर किए हुए भस्म को शस्त्र के ऊपर लेप लगाने से तैयार होता है। आगे जाकर शोकरहित करने वाले नागवृक्ष, शिरीष, कुटकी, बेलपत्र, सुम्बूर, तेन्दु, अश्वत्थ, नन्दी, तिलक, आम, ककेली आदि वृक्षों की मिट्टी को रोगोपचार में प्रयुक्त करने का विधान है। मेष श्रृंग वृक्ष के गर्भ से प्राप्त मिट्टी द्वारा आकाश-गमन की सिद्धि तथा दारु वृक्ष की जड़ से सोना बनने का उल्लेख है और इस विद्या को तथा रत्न, स्वर्ण, चांदी, पारा, लौह एवं पाषाण आदि

को 'क्षणमात्र' में भस्म करने की विद्याओं को पार्श्वनाथ तीर्थंकर के गणित से समझने का आदेश है । आगे आकाशगमन सिद्धि का उल्लेख है। इसके लिए उन २४ वृक्षों की जिनकी छाया को तीर्थंकरों ने अपने तप से पवित्र किया था, नामावली गिना कर सबको अशोक संज्ञा दी गई है और बताया गया है 'इन वृक्षों के पुष्प जब खिल जाते हैं तब उनमें से निकलने वाली सुगंध की वायु का शरीर से स्पर्श होते ही शरीर के सभी बाह्य रोग नष्ट होते हैं । सुगंध के सूंघने से मन के रोगों का नाश होता है । ऐसा होने से इन फूलों को पीस कर निकले हुए पारे के रस से बनाये हुआ रस मणि के उपभोग से आकाश गमन अर्थात् खेचर नाम ऋद्धि प्राप्त होने में क्या आश्चर्य है । अर्थात् कुछ भी आश्चर्य नहीं है ।'

तेरहवें अध्याय में अढाई द्वीप वाले भारतवर्ष के मध्यप्रदेशीय लाड देश के परमेष्ठी आगमानुसार तपस्या करने वाले साधुओं की सिद्धि का वर्णन है । उन साधुओं को ज्ञान-मद से मुक्त बताया गया है और उनके अनेकानेक गुणों का व्याख्यान हुआ है । उन्तालीसवें छन्द में ऐसे मुनियों को महर्षि संज्ञा दी गई है और भक्ति भावना से यह कामना करने का उपदेश है कि उनके पद हमको भी प्राप्त हों । इसी उदात्त भाव का यह भूवलय दयामय रूप है ।

स्वर अक्षरों में कु चौदहवां अक्षर है । इसी अक्षर के नाम से आचार्य ने चौदहवें अध्याय को 'कु' नाम दिया है । इसमें अनेक सिद्ध मुनियों तथा उनकी ऐसी सिद्धियों का उल्लेख है जिनके कारण उनके थूक, लार, पसीने तथा कान, आंख, दन्त एवं मल के छूने मात्र से शरीर के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं । ये वर्णन कवि की अतिशय श्रद्धा के परिणाम प्रतीत होते हैं । उनका कहना है—'ऐसे ऋद्धिधारक मुनि जिस वन में रहते हैं, उनके प्रभाव से उस वन की वनस्पतियां (वृक्ष, बेल, पौधे आदि) के फल-फूल पत्ते, जड़, छाल भी महान् गुणकारी एवं रोगनाशक हो जाते हैं (११५) । ऐसे रोगनाशक १८००० पुष्पों से बने पुष्पायुर्वेद का उल्लेख है जिससे अनेक चमत्कारिक योग बनते हैं जैसे पाद रस इस रस को तलुवों में मलने से योजनों तक शीघ्र चले जाने की शक्ति आ जाती है । यहीं पर मांस मदिरामय, चरकादि, हिंसा आयुर्वेद को धिक्कारा है और अहिंसामय आयुर्वेद के निर्माणकर्त्ताओं की उत्पत्ति के अयोध्या, कोशाम्बी, चन्दपुरी आदि नगरों की सूची दी है । और चूंकि अहिंसामय आयुर्वेद तीर्थंकरों की वाणी से प्रकट हुआ है अतः तीर्थंकरों के कुलों की सूची तथा उनकी माताओं की सूची दी गई है । उन्होंने बताया है कि 'श्री जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट आयुर्वेद स्वपर कल्याणार्थ सभी को पढ़ना चाहिए । श्री पूज्यपाद आचार्य ने आयुर्वेदिक कल्याणकारक ग्रंथ द्वारा सिद्ध रसायन को काव्य निबद्ध किया, उसी का मैंने (श्री कुमुदेन्दु ने) भूवलय के रूप में अंक निबद्ध करके रोग मुक्ति का द्वार खोल दिया है ।'

प्रस्तुत जिल्द में संगृहीत १४ अध्यायों के अनुवाद पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथ का कथ्य अद्भुत है । उसमें धर्म, दर्शन, नीति, विज्ञान, आयुर्वेद, गणित तथा अतिविद्या अथवा पराविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान संगृहीत है । इस ज्ञान को कुमुदेन्दु आचार्य ने नीरस नहीं अपितु काव्यात्मक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है । कहीं व्याख्यात्मक शैली है तो कहीं सूत्रात्मक; कहीं आलंकारिक शैली का आश्रय लिया गया है तो कहीं कथात्मक शैली का । व्याख्यात्मक शैली कवि को विशेष प्रिय है । अनन्त, ओउम् भूवलय, योग, योगी, भाषा, मोक्ष आदि की विस्तृत एवं अनेक प्रकार से अनेक बार व्याख्या की गई है । मोक्ष को कामिनी, तथा जैनधर्म को विषयुक्त समाज के लिए गारुड़ मणि कहकर अलंकारिक चमत्कार उत्पन्न किया गया है (पृ० ५२) । अलंकारों के साथ ही कानड़ी भाषा के सांगत्य छन्द ने कितना मार्दव उत्पन्न किया होगा उसका आस्वाद तो कानड़ी विद्वान् ही ले सकते हैं परन्तु उसकी कल्पना अवश्य की जा सकती है । चक्रबन्ध, हंसबन्ध, नवमांक बन्ध तथा अंक बन्धादि गणितीय पद्धति द्वारा ज्ञान कथन विशेष महत्त्व की बात है । दार्शनिक ज्ञान की दृष्टि से तो इसे पढ़कर गीता याद हो आती है । यह भी उल्लेखनीय है कि भूवलय में कई गीताओं का उल्लेख है । कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय में जो गीता संकलित की है, वह महाभारत से पूर्व के लुप्त हुए 'भारत जयाख्यान' काव्य से उद्धृत है । उसका अन्तिम श्लोक निम्नलिखित है—

चिदानन्दधने कृष्णेनोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम् ।
वेदत्रयी परानन्दतत्वार्थ ऋषि मण्डलम् ।।

यह भी ध्यातव्य है कि कुमुदेन्दु जी ने स्वयं कृष्ण रूप हो, अर्जुन रूपी राजा अमोघवर्ष को उसी गीतात्मक शैली में उपदेश दिया है। यह भी अंकमयी गणितीय भाषा में है । इस जिल्द में तो वैसे भी १४ अध्यायों का ही अनुवाद है जिसके लिए मूलतः स्व० विद्वान् अनुवादक स्व० एलप्पा शास्त्री तथा विद्यावारिधि देशभूषण जी महाराज समस्त ज्ञान प्रेमियों के साधुवादाह तथा प्रणम्य हैं । उनकी सरस्वती साधना हमारा अवश्य ही कल्याण करेगी । आचार्य कुमुदेन्दु ने भी द्वितीय अध्याय के मध्यवर्णी अक्षरों द्वारा निकलने वाले संस्कृत श्लोक में यही कामना की है कि अविरल शब्द समुदाय स्वरूपा, मुनिजन उपास्या, समस्त जगत् कलंक को धो देने वाली तीर्थ रूपी सरस्वती (जिन वाणी) हमारे पापों का क्षय करे—

अविरलशब्दघनौघ प्रक्षालित
सकल भूतल मल कलंका ।
मुनिभिरूपासिततीर्था
सरस्वती हरतुनो हुरितान ।।